रोज़मर्रें की कहानियाँ

होल्गार पुक्क

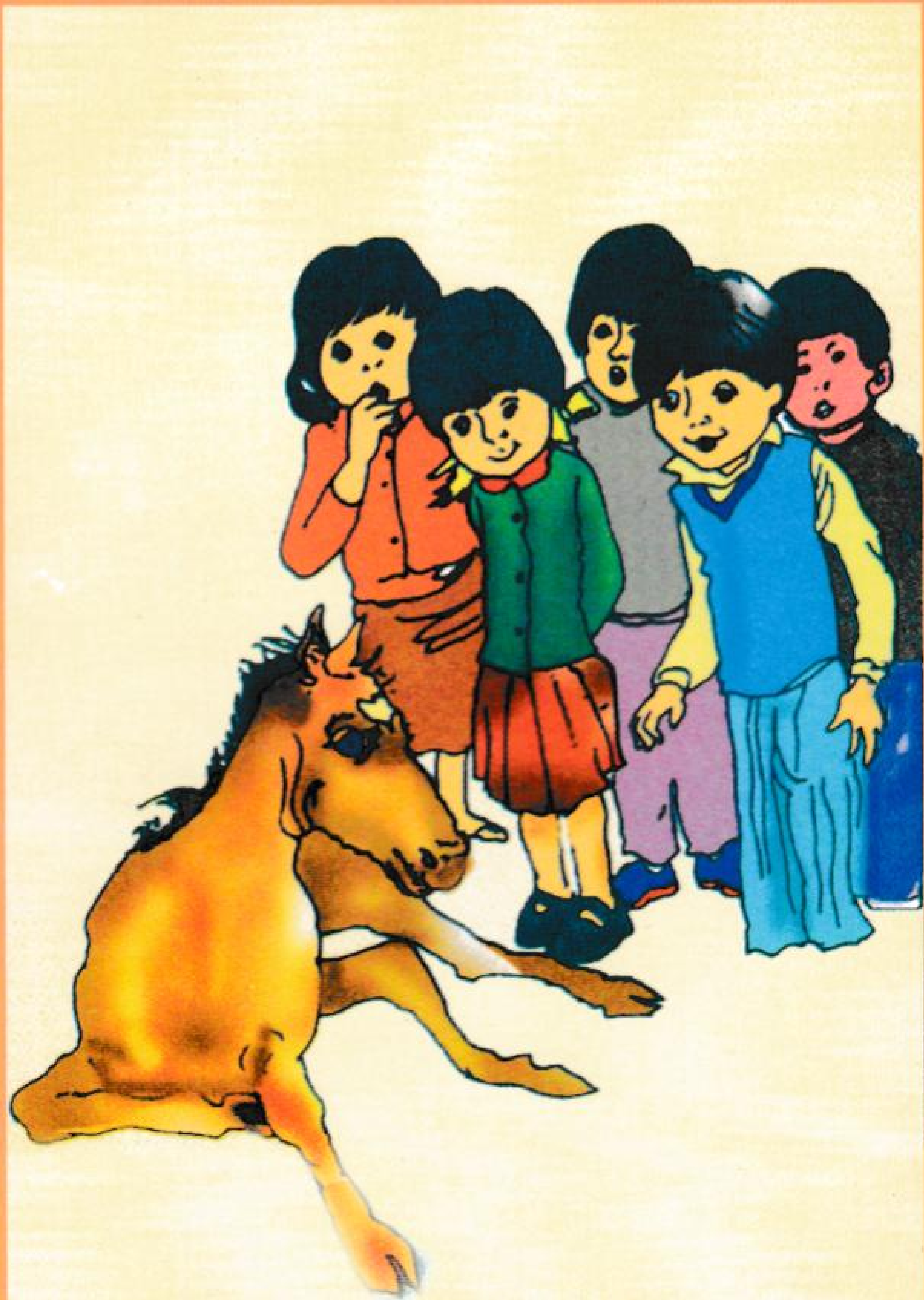

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य : 20 रुपये
पहला हिन्दी संस्करण 2003
पुनर्मुद्रण : जनवरी, 2008
पुनर्मुद्रण : अगस्त, 2012

प्रकाशक
अनुराग ट्रस्ट
डी - 68, निरालानगर
लखनऊ - 226020

लेजर टाइप सेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन
मुद्रक : क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस-28, शक्तिनगर, लखनऊ

अनुक्रम

विशाल हिमगोला	5
चन्दू की चिट्ठी	8
शेर	11
एक उजली सुबह को	14
दादी माँ, नीरू और गुलचाँदनी	16
रानू और मानू	19

विशाल हिमगोला

राजू हमेशा बड़ी चीज़ें करना चाहता है। क्योंकि बड़ी चीज़ें आसानी से देखी और सुनी जा सकती हैं।

भोज की छोटी टहनी से कोई बच्चा भी नहीं डरता। पर एक बड़ी लाठी से हर आदमी डर जाता है। बेआवाज़ सिसकी भरने पर कभी कोई तुम्हें तसल्ली देने नहीं आता। गला फाड़कर रोने पर दादी दौड़ी चली आतीं। मामूली ताक़त किसी का ध्यान नहीं खींचती। बड़ी ताक़त निश्चय ही वाहवाही लूटती है।

राजू यह जानता है। वह एक होशियार लड़का है।

पिछले दिन उसने स्कूल के मैदान में एक हिमगोला बनाने की ठानी। गेंद जैसी कोई छोटी-मोटी चीज़ नहीं। बेशक, एक बड़ा-सा गोला।

वह गोले को लुढ़काता गया, लुढ़काता गया। जल्दी ही बर्फ़ का वह गोला फुटबाल जितना बड़ा हो गया।

वह उसे लुढ़काता ही रहा। हिमगोला एक विशाल गुब्बारे से भी बड़ा हो चुका था।

"ऐ, राजू!" मिन्नी ने पुकारा। "यह काफ़ी बड़ा हो चुका है। अब चलो बर्फ़ का आदमी बनाये।"

"नहीं, अभी नहीं हुआ है," राजू पलटकर चिल्लाया और उसे लुढ़काता रहा। बर्फ़ का गोला अब इतना बड़ा हो चुका था जितना कि समुद्रतट पर खेले जाने वाली सबसे बड़ी गेंद।

"राजू", मिन्नी ने आवाज़ लगायी। "अब बन्द भी करो लुढ़काना! चलो बर्फ़ का आदमी बनायें।"

"बन्द नहीं कर सकता," राजू ने कहा।

बर्फ़ का गोला अब लगभग राजू की ऊँचाई तक पहुँच चुका था। वह लड़का अब मुश्किल से ही उसे खिसका पा रहा था। फिर भी यह उसे करना ही था। मिन्नी ने कहा क्यों नहीं कि यह एक विशाल हिमगोला है? वह कहती क्यों नहीं कि उसने इतना बड़ा हिमगोला पहले कभी नहीं देखा?

राजू ने ज़ोर लगाया और पसीने से नहा उठा। उसने बर्फ़ में अपनी एड़ी धँसा दी और अपनी पीठ से धक्का देने लगा। यह लुढ़केगा! इसे लुढ़काना ही होगा! और वह लुढ़का भी। धीमी गति से। रुक-रुक कर।

"यह मिन्नी आख़िर इन्तज़ार किस बात का कर रही है? उसे अचरज से भर उठना चाहिए था। क्या वह सिर्फ़ इतना नहीं कह सकती; अरे बाप रे, क्या ग़ज़ब की चीज़ है! कितने ताक़तवर हो तुम! कभी इतना बड़ा हिमगोला नहीं देखा!"

राजू ने बहुत कड़ी मेहनत की, अपनी पूरी ताक़त लगाकर ढकेलता रहा। गोला ज़रा आगे बढ़ता... और फिर थोड़ा आगे....

अचानक राजू ने खुद को पीठ के बल बर्फ़ पर लेटे हुए पाया। और गोला, बेशक नीचे ढलान की ओर अपनेआप लुढ़क रहा था। यह तेज़ और तेज़ होता गया और

रास्ते–भर इसका आकार बढ़ता रहा, बढ़ता रहा। जब तक कि अन्त में यह पौधघर से जाकर टकरा नहीं गया।

"हाय, राम! कितना बड़ा धमाका! और शीशे बिल्कुल चकनाचूर! अब तुम तो मारे गये," मिन्नी चिल्ला पड़ी।

राजू को उसकी प्रशंसा पाने में कोई दिलचस्पी न रही।

"यह सब तुम्हारी ग़लती से हुआ," वह चिल्लाया और मुक्का लहराते हुए मिन्नी के पीछे भागने लगा।

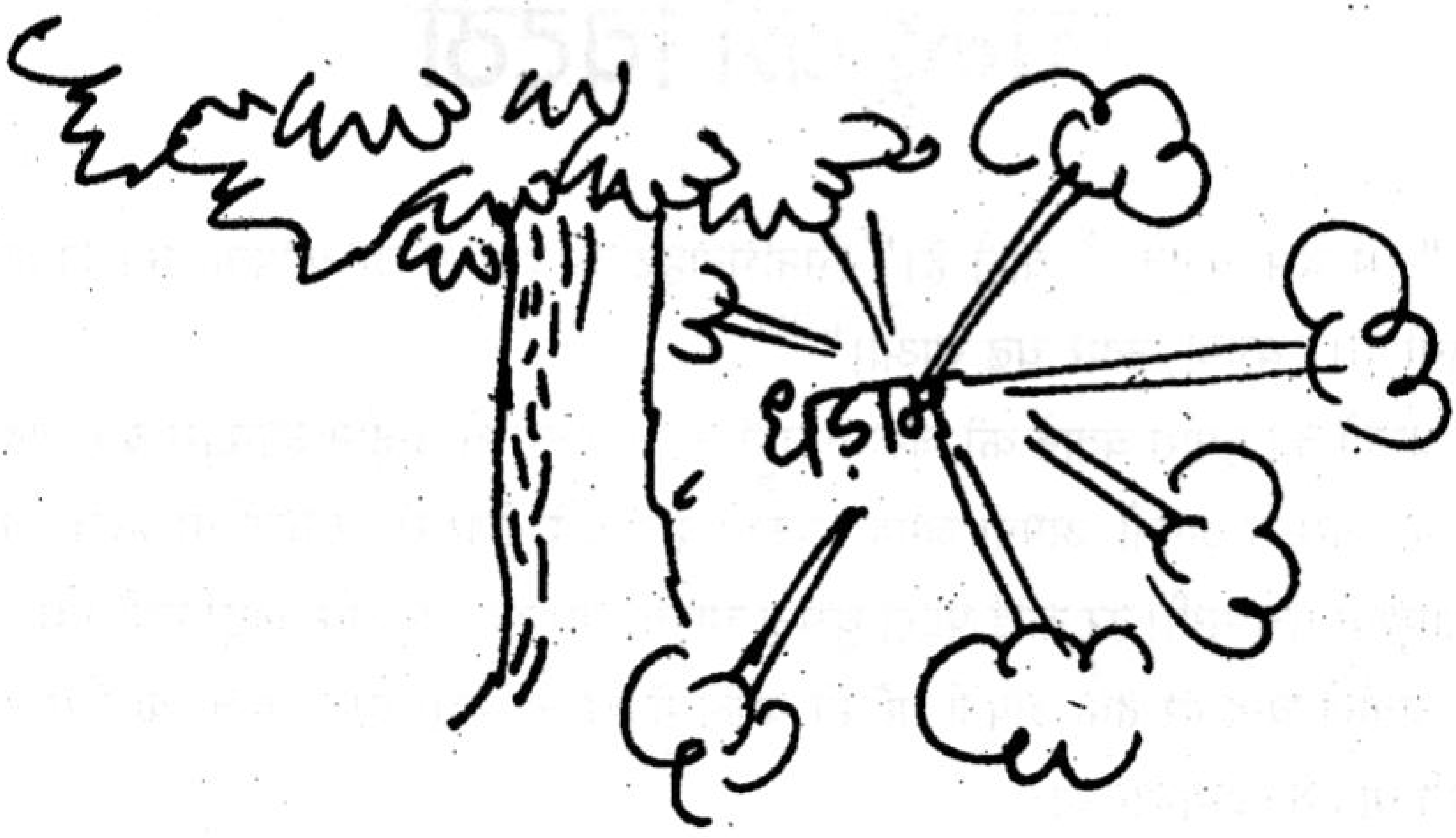

चन्दू की चिट्ठी

"हम बस चलने ही वाले हैं।" भिनभिनाहट के शोर में अध्यापिका की आवाज़ सुनायी दी। "बच्चो, ऊपर चढ़ जाओ!"

बच्चों को दुबारा बताने की ज़रूरत नहीं पड़ी। जल्दी से उन्होंने आख़िरी बार विदाई ली और बस में अपनी-अपनी जगह छिकाने दौड़ पड़े, जिससे दरवाज़ों पर हल्की-सी धींगामुश्ती मच गयी। हर कोई पहले घुसना चाहता था। यहाँ तक कि लड़कियाँ भी।

अकेले चन्दू देर तक अपनी माँ की बग़ल में डोलता रहा। ऐसा लगता था जैसे उसे किसी बात का इन्तज़ार था।

"जाओ, बेटा," उसकी माँ ने उसे आगे ठेला और कहा, "मैं आज रात तुम्हें ख़त लिखूँगी।"

"तुम भूलोगी तो नहीं?" चन्दू ने पूछा। "मैं भी तुम्हें ख़त लिखूँगा।"

"तुम्हें बहुत लम्बी चिट्ठी लिखने की ज़रूरत नहीं है। इसमें बहुत समय लगेगा," उसकी माँ ने सलाह दी। बस दो-चार पंक्तियाँ लिख देना। हमें बताना कि तुम्हें शिविर में सबसे अच्छा क्या लगा ..."

"अच्छा, ठीक है!" चन्दू बोल उठा और हाथ-पैर से टेकते हुए जल्दी-जल्दी पायदान पर चढ़ गया। चलो हो गया! आख़िरकार सभी बस में चढ़ गये। बस चालक ने इंजन चालू कर दिया।

एक दिन बाद चन्दू को चिट्ठी मिली। वह टाइप की हुई थी, क्योंकि चन्दू अभी तक अपनी माँ की लिखावट बहुत अच्छी तरह नहीं पढ़ पाता। माँ ने एक बहुत मज़ेदार तस्वीर भी बनायी थी। इसमें चन्दू था, गिलहरियों के साथ चीड़-शंकु फेंकने का खेल खेलते हुए।

चन्दू ने चिट्ठी कई बार पढ़ी। तस्वीर में वह अपनी खुद की चपटी नाक, अपनी धारीदार क़मीज़ और लाल हाफ़पैण्ट को पहचान गया। उसे अच्छी तरह याद था कि कब उसकी माँ ने यह पैण्ट बनाया था। और उसके पिता ने उसके लिए धारीवाली कमरपेटी ख़रीदी थी।

चन्दू ने बहुत कोमलता से पैण्ट पर हाथ फिराया, कमरपेटी का स्पर्श किया और जवाब लिखने बैठ गया। इसे संक्षिप्त होना चाहिए। उसे अपनी माँ को इस ग्रीष्म-शिविर की सबसे उत्तेजक घटना के बारे में बताना था।

आख़िर वह लिखे तो क्या लिखे?

झण्डे का फहराना या हल्ला-गुल्ला, मौज-मस्ती? बड़ी-बड़ी चट्टानों के बीच तैरना? या गेंद का वह नया खेल जो उसने सीखा है? या फिर जंगली सुअर का वह नन्हा-मुन्ना जो उनके रास्ते से गुज़रा था?

बहुत ज़्यादा सोचने की ज़रूरत नहीं थी। उसने अपना क़लम उठाया और लिखना

शुरू कर दिया...

कुछ दिनों बाद जब चन्दू की माँ ने उसकी चिट्ठी खोली तो उसमें लिखा था – "प्यारी माँ! मुझे तुम्हारी चिट्ठी मिल गयी। चन्दू।"

शेर

मैदान में हिमगोला-फेंक खेल ज़ोरों पर था। बर्फ़ के गोले सनसनाते हुए मार कर रहे थे। वीनू एक जाँबाज़ खिलाड़ी था। वह कभी घुटने नहीं टेकता, कभी मैदान नहीं छोड़ता। उस पर हर तरफ़ से बौछार हो रही थी, परन्तु वह वीनू को रोक नहीं पाता था। ऐसे समय वह निडर होकर आगे बढ़ता।

तभी किसी ने खिड़की खोली और एक तेज़ आवाज़ आयी, "देखना कहीं खिड़कियों के शीशे मत चूर कर देना!"

एकदम ख़ामोशी छा गयी। हर कोई उस व्यक्ति को जानता था। वह एक कलाकार था, एक व्यंग-चित्रकार। उसके व्यंग-चित्र आपको हँसाते, पर वह आदमी खुद बहुत गम्भीर, लगभग मनहूस-सा था। उसके लम्बे बाल और घनी दाढ़ी उसे भयंकर बना देते। एक सचमुच के शेर जैसा। और लड़के वाक़ई उसे शेर कहकर बुलाते थे।

शेर वहाँ से हट चुका था, लेकिन खिड़की खुली छोड़ दी गयी थी।

"शेर ने अपनी माँद से बाहर झाँका," वीनू ने खिल्ली उड़ायी और अपने दुश्मनों पर गोला दागने लगा, जिन्होंने पलटकर वैसा ही जवाब दिया। और वह भीषण युद्ध चलता रहा।

अचानक एक बड़ा-सा गोला उड़कर कलाकार की खिड़की से भीतर चला गया।

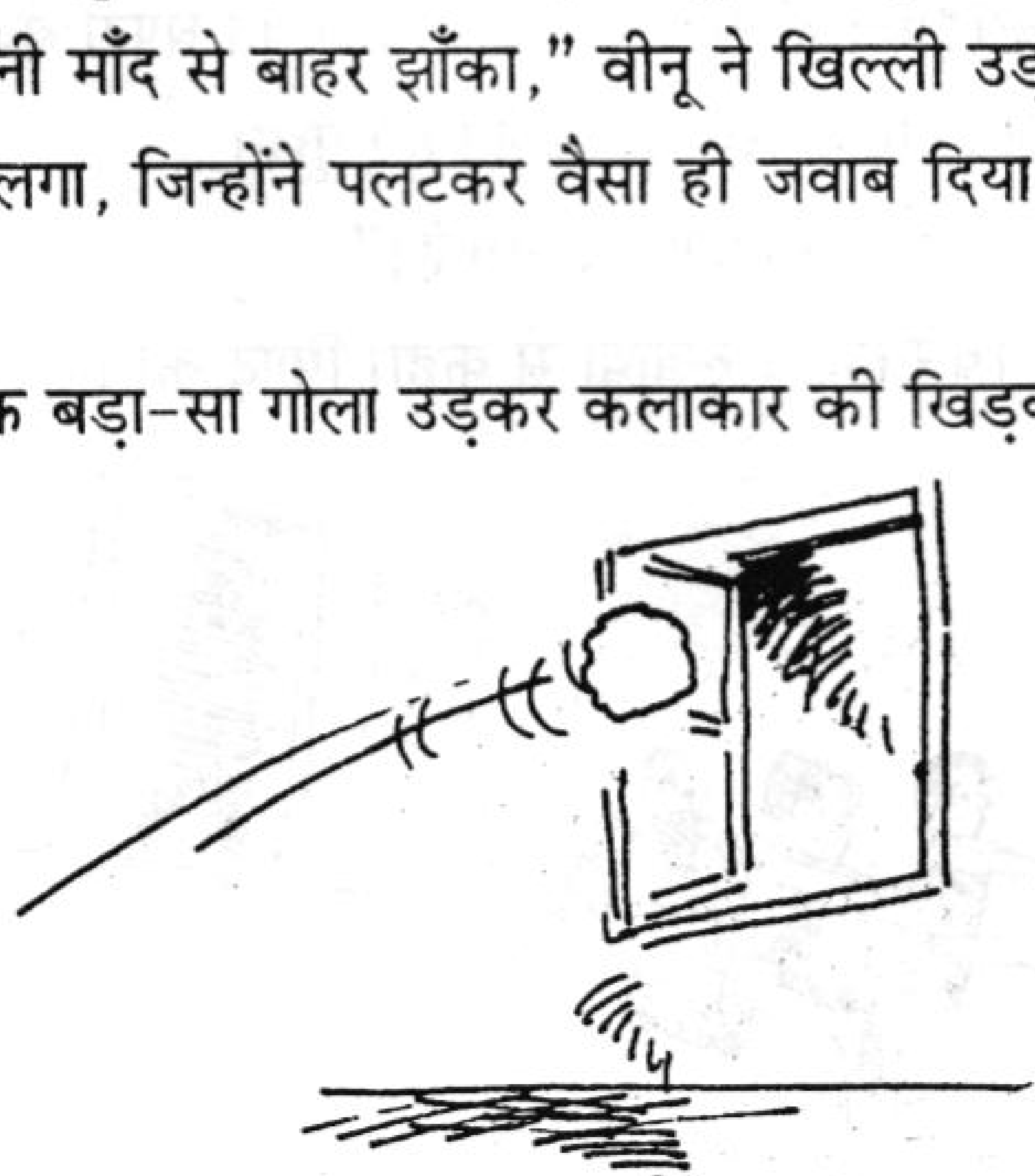

यह वीनू का हिमगोला था। बहादुर होने के अलावा, वह ताक़तवर भी था।

खेल बन्द हो गया। लड़के भयभीत थे। अब क्या होगा?

शेर का कमरा चित्रों से भरा हुआ है। वे मेज़ पर, कुर्सियों पर और यहाँ तक कि फ़र्श पर पड़े रहते थे। लड़कों को यह पता था। उसकी खिड़की के भीतर वे कई बार ताक-झाँक कर चुके थे।

लेकिन बर्फ़ का गोला जल्दी ही पिघलना शुरू कर देगा...वह कहीं भी गिरा हो सकता है। वह तस्वीरों को नुक़सान पहुँचा सकता है। रंगों को धुँधला कर सकता है।

योद्धाओं ने वीनू की तरफ़ देखा। पर वीनू ने कहा, "अरे हटाओ भी! चलो भाग चलें!"

और वह जान छुड़ाकर नौ-दो ग्यारह हो गया। लड़के अनिर्णय की स्थिति में थे। क्या वे भी भाग खड़े हों? बर्फ़ का गोला तो अब तक पिघलने भी लगा होगा...

अचानक पिण्टू घूमा और लड़कों के बग़ल से निकलता हुआ मकान की तरफ़ दौड़ पड़ा।

ट्रींग-ट्रींग! उसने घबड़ाहट के साथ शेर के दरवाज़े की घण्टी बजायी।

"क्या बात है?" चित्रकार ने दरवाज़ा खोलते हुए पूछा।

"आपके स्टूडियो में एक हिमगोला आ गिरा है।"

"तो यह बात है!" चित्रकार ने रुखायी से कहा। पिण्टू का दिल बैठ गया। "अन्दर

आ जाओ!" पिण्टू का कलेजा और भी दहल गया। वह स्टूडियो के भीतर आ गया।

बर्फ़ का गोला फ़र्श पर पिघलने लगा था, पर सौभाग्य से उसके आस-पास कोई तस्वीर नहीं थी। चित्रकार ने हिमगोले के बचे-खुचे हिस्से को समेटा और बाहर अहाते में फेंक दिया। तब अपनी घनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कुछ सोचता-सा वह पिण्टू की ओर टकटकी बाँधकर देखने लगा।

"यहाँ बैठ जाओ," उसने कुर्सी की ओर इशारा किया।

लड़का बिल्कुल डर गया। "अब मुझे डाँट पड़ेगी। डाँट तो मुझ पर बस पड़ने ही वाली है," उसने सोचा।

परन्तु चित्रकार ने एक बड़ा-सा कागज़ लिया और चित्र बनाने बैठ गया। उसने पिण्टू की तरफ़ देखा और ख़ासे समय तक चित्र बनाना जारी रखा। तब अपने उस चित्र को उसने लपेटा और पिण्टू की ओर बढ़ा दिया।

"यह तुम्हारे लिए। अच्छा अब घर चल दो!"

पिण्टू बिजली के कौंध की तरह अहाते में जा पहुँचा।

सभी योद्धाओं ने सारस की तरह अपनी गर्दन उचकायी। चित्र में एक गुफा थी। गुफा में बहुत बड़ा शेर और एक पिद्दी-सा लड़का आमने-सामने खड़े थे। लड़का काफ़ी हद तक पिण्टू से मिलता-जुलता लग रहा था। और शेर ने पिण्टू से हाथ मिलाने के लिए अपना पंजा आगे बढ़ा रखा था। नीचे लिखा हुआ था।

"शेरों की आपस की बात।"

एक उजली सुबह को

बर्फ़ बनाने वाला बूढ़ा हिम-बाबा रात-भर चाँदी से बर्फ़ के बड़े-बड़े टुकड़े पृथ्वी पर बिखेरता रहा। सुबह होने तक बर्फ़ की बोरियाँ ख़ाली हो चुकी थीं और उसका काम पूरा हो गया था।

सूरज निकलने के साथ एक नन्हा बच्चा और उसकी माँ ने दरवाज़े से बाहर क़दम रखा।

जगमग-जगमग करते एक हिमश्वेत-से परीलोक ने उनका स्वागत किया। बाड़े के खम्भों ने शुभ्र धवल टोपियाँ पहन रखी थीं, सामने की सीढ़ियाँ और किनारे की पगडण्डी मोटी सफ़ेद चादर के नीचे छिप गयी थी। सड़क के दोनों ओर ठिंगने नींबू पेड़ों में प्रत्येक के शिखर पर झलमलाता हुआ एक विशाल रोयेंदार हिमगोला रखा हुआ था।

दरवाज़े से लगी लाइलैक की नंगी काली झाड़ियाँ ग़ायब हो चुकी थीं। हर टहनी एक हिमश्वेत जादू की छड़ी में बदल गयी थी। और सूरज उन पर जगमगाते हुए चमकीले बिल्लौर जड़ने का काम कर रहा था।

"माँ, माँ!" लड़का चिल्ला उठा। "मुझे एक सुन्दर-सी सफ़ेद टहनी ले लेने दो।"

"नहीं, प्यारे," माँ ने सिर हिलाते हुए कहना शुरू किया।

"तब मैं खुद ही ले लूँगा," बच्चे ने अधीर होकर कहा।

इसके पहले ही वह पंजों के बल खड़ा हो चुका था और उसके रंगबिरंगे दास्ताने ने एक टहनी पकड़ ली थी।

झाड़ियों में एक ठिठकी हुई-सी सिहरन दौड़ गयी। कुछ बर्फ़ छिटककर बच्चे के ऊपर उठे चेहरे पर बिखर गया।

"मिल गया! मुझे मिल गया!" बच्चा खुशी से झूम उठा। पर तभी उसने देखा कि

उसके रंगबिरंगे दास्ताने ने महज़ एक गहरी भूरी-सी टहनी थाम रखी है। शीतकालीन लाइलैक झाड़ी की एक अत्यन्त मामूली-सी टहनी।

जब बच्चे ने अपना सिर ऊपर उठाया तो उसने देखा कि वह झाड़ी फिर से ख़ाली और काले रंग की हो गयी है। उजले बर्फ़ की जादुई जगमगाहट उसका साथ छोड़ चुकी थी।

बच्चे ने उस मामूली टहनी को दरवाज़े से सटे मामूली लाइलैक झाड़ी के नीचे फेंक दिया।

"तुम बुरे बर्फ़ हो!" लड़का चिल्लाया। "बुरे बर्फ़ हो! क्यों तुम झाड़ी से बाहर निकल आये?"

वह सीढ़ियों से उतरकर पगडण्डी पर भागा और गुस्से से बर्फ़ पर ठोकर मारने लगा। बाड़े के खूँटों पर सफ़ेद टोपियों को उसने रगड़कर साफ़ कर डाला।

और उजली सफ़ेद परीलोक जैसी जगमगाहट को पगडण्डी और बाड़े के खूँटों का साथ भी छोड़ देना पड़ा।

माँ ने तब नन्हे बच्चे का हाथ अपने हाथ में ले लिया और वहाँ से वे चल दिये।

और उजली परीलोक जैसी अद्‌भुत सुबह को उनके पीछे बचा रह गया एक-एक उजाड़ और मामूली-सा अहाता।

दादी माँ, नीरू और गुलचाँदनी

आज दोपहर नीरू स्कूल से अकेले ही घर जा रही है। दादी माँ उसे लेने नहीं आ पायेंगी। उनके पैर में तकलीफ़ है। दादी ने यह सुबह ही बता दिया था।

स्कूल के अहाते से उछलते-कूदते नीरू फाटक की ओर बढ़ती है। सूरज चमक रहा है, रास्ता बिल्कुल सूखा है – इतना कि जैसे यह तुम्हें फुदकने के लिए लगभग आमन्त्रित करता लग रहा है।

हठात् नीरू के क़दम रुक गये : उसे किसी झाड़ के नीचे एक नन्हा-सा फूल नज़र आ गया था। अरे! यह तो गुलचाँदनी है! लम्बी शीत ऋतु के बाद बसन्त का पहला फूल! कितना प्यारा लग रहा है, कितना सुन्दर! नीरू नज़दीक से देखने के लिए उकड़ूँ बैठ जाती है। और घोर आश्चर्य! नीरू ने गुलचाँदनी को बोलते सुना :

"नमस्ते, नीरू मैं तुम्हें खुशी देना चाहती हूँ। तुम्हें और तुम्हारी दादी माँ को। इसीलिए मैं इतनी जल्दी उग आयी। लेकिन तुम्हारी दादी माँ हैं कहाँ?"

नीरू अब हड़बड़ी में है। वह सीधे घर की ओर दौड़ पड़ती है। हाँफती हुई, वह पुकारने लगती है –

"दादी माँ, दादी माँ। स्कूल के अहाते में झाड़ियों के नीचे एक गुलचाँदनी खिली हुई है। दादी माँ मेहरबानी करके चलो और उसे देख आओ।"

"अरे, सचमुच? इतनी जल्दी?" दादी माँ चकित हैं।

"आओ जल्दी चलें, दादी माँ!"

"मैं आ रही हूँ, बिटिया रानी। गुलचाँदनी का फूल तो मुझे देखना ही है। पूरे एक साल से देखा जो नहीं।"

दादी ने अपने पाँव पर पड़े गरम ऊनी कम्बल को एक तरफ़ खिसकाया।

और अब वे चल पड़ी हैं, नीरू अपनी दादी माँ का हाथ खींच रही है। दादी माँ जितना तेज़ चल सकती हैं, चल रही हैं। आख़िरकार वे स्कूल के अहाते में पहुँच गयीं।

लेकिन वहाँ तो गुलचाँदनी फूल का कोई नामोनिशान तक नहीं। किसी ने उसे तोड़ लिया ...

"ओह दादी माँ, अब तुम उसे देख भी नहीं पाओगी... वह इतना सुन्दर था!"

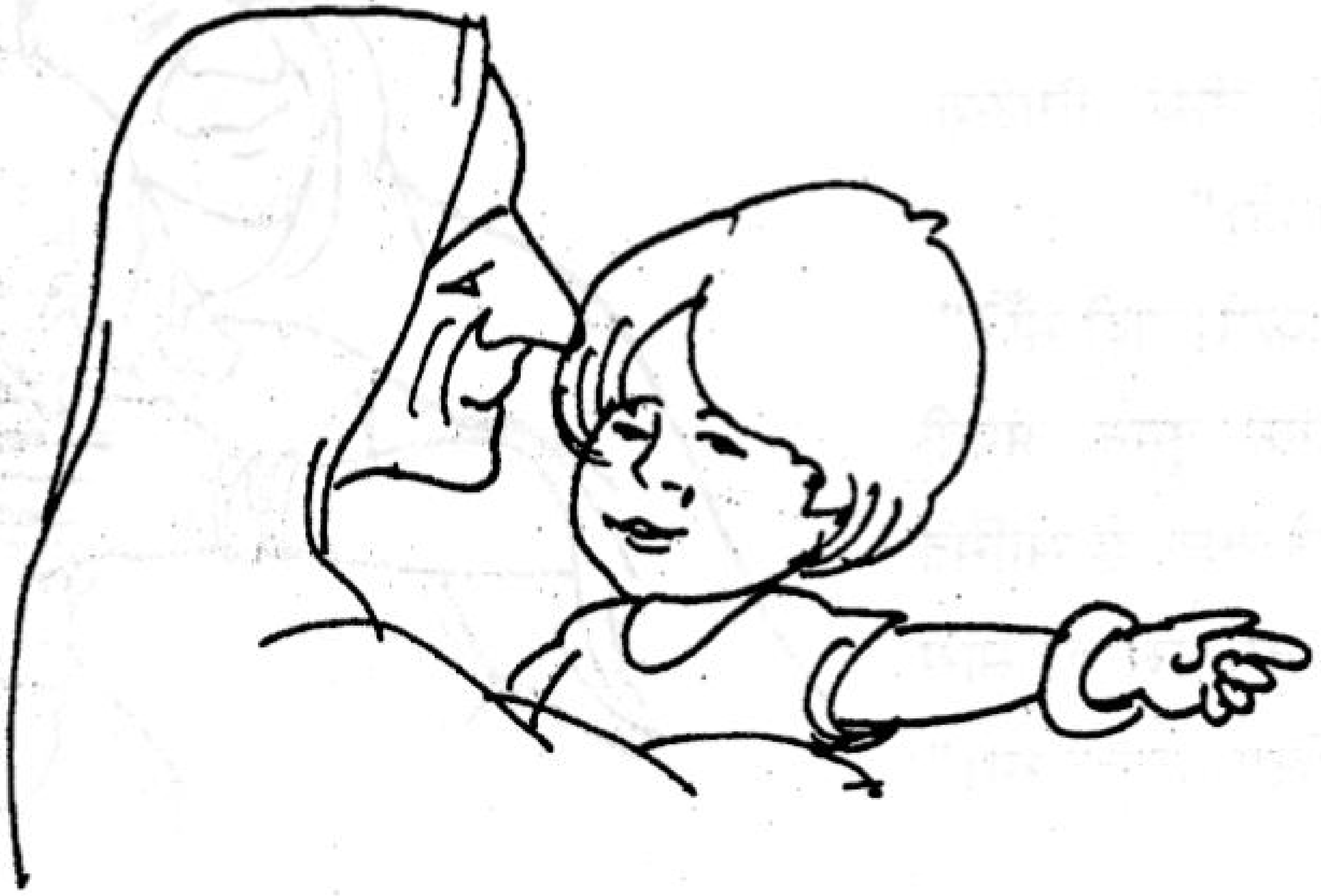

नीरू बहुत उदास हो गयी। उसके आँसू बस फूट पड़ने को हैं। उसे याद आया कि उसकी दादी माँ के पाँव में तकलीफ़ है। और उसे अब इतना लम्बा रास्ता तय कर आना पड़ा है। सो भी बिल्कुल बेकार में.... नीरू फूट-फूटकर रोने लगी। वह रोक नहीं पायी।

दादी माँ ने उसे चिपका लिया और कहने लगीं :

"मत रो, मेरी बच्ची! मैंने गुलचाँदनी को तुम्हारी आँखों से देख लिया।"

नीरू ने चकित होकर चेहरा ऊपर उठाया और अपने आँसू पोंछ डाले।

"क्या तुम मेरी आँखों से देख सकती हो?"

"देख सकती हूँ, बिटिया! और तुम्हारी खुशी ने मुझे बताया कि वह सचमुच बहुत ख़ूबसूरत था।"

नीरू के होंठों पर फिर से मुस्कुराहट आ जाती है। घर लौटने के बाद, जब दादी माँ अपनी आरामकुर्सी पर बैठी हुई थीं, नीरू उनके पैरों को फिर से मोटे ऊनी कम्बल में लपेट देती है। अचानक वह बोल उठी –

"तुम बहुत दयालु हो, दादी माँ।"

"नहीं, नीरू बिटिया, दयालु तुम हो।"

"यह कैसे, दादी माँ?"

"क्योंकि तुमने अपनी खुशी अपने तक ही सीमित नहीं रखी। तुम उसे मेरे साथ बाँटने के लिए उत्सुक थी।"

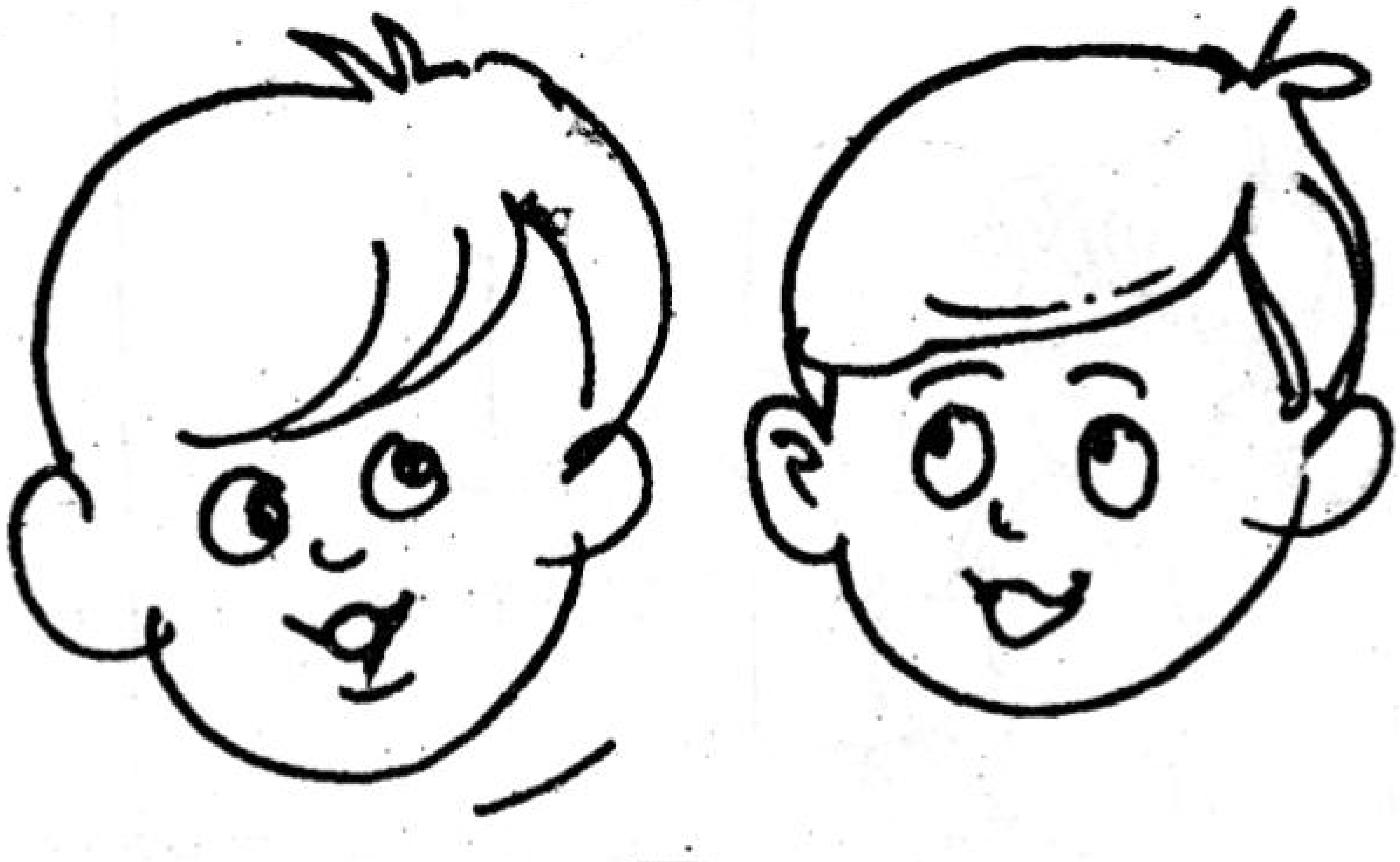

रानू और मानू

मानू का उसी मेज़ पर बैठने वाला एक सहपाठी है। सभी स्कूली बच्चों के होते हैं। मानू और उसके साथ ही बैठने वाला सहपाठी गहरे मित्र हैं। यह भी कोई नयी बात नहीं है। एक ही मेज़ पर साथ बैठने वालों की हमेशा अच्छी पटती है। लेकिन मानू और उसका सहपाठी एक ही मकान में और एक ही मंज़िल पर रहते भी हैं, जो उन्हें और भी पक्का दोस्त बना देता है। वे हर जगह साथ-साथ जाते हैं। वे साथ-साथ स्कूल जाते हैं, वे गेंद और साँप-सीढ़ी का खेल साथ-साथ खेलते हैं। वे, बेशक, अक्टूबर में जन्मे बच्चों के समान एक ही राशि के हैं। जब मानू को अलबम बनाने के लिए चित्र इकट्ठा करने का काम दिया जाता, तो रानू भी उसी काम को करने के लिए लालायित हो उठता। और जब रानू उनके उत्सव आयोजन के लिए झाड़ी काट रहा होता तो मानू भी उसी काम को अपने लिए बिल्कुल उचित पाता।

एक दिन रानू बीमार पड़ गया। आप सोच सकते हैं कि वे दोनों किस क़दर उदास हो गये होंगे। उससे भी बुरी बात यह हो गयी कि रानू को संक्रामक बीमारी हो गयी थी

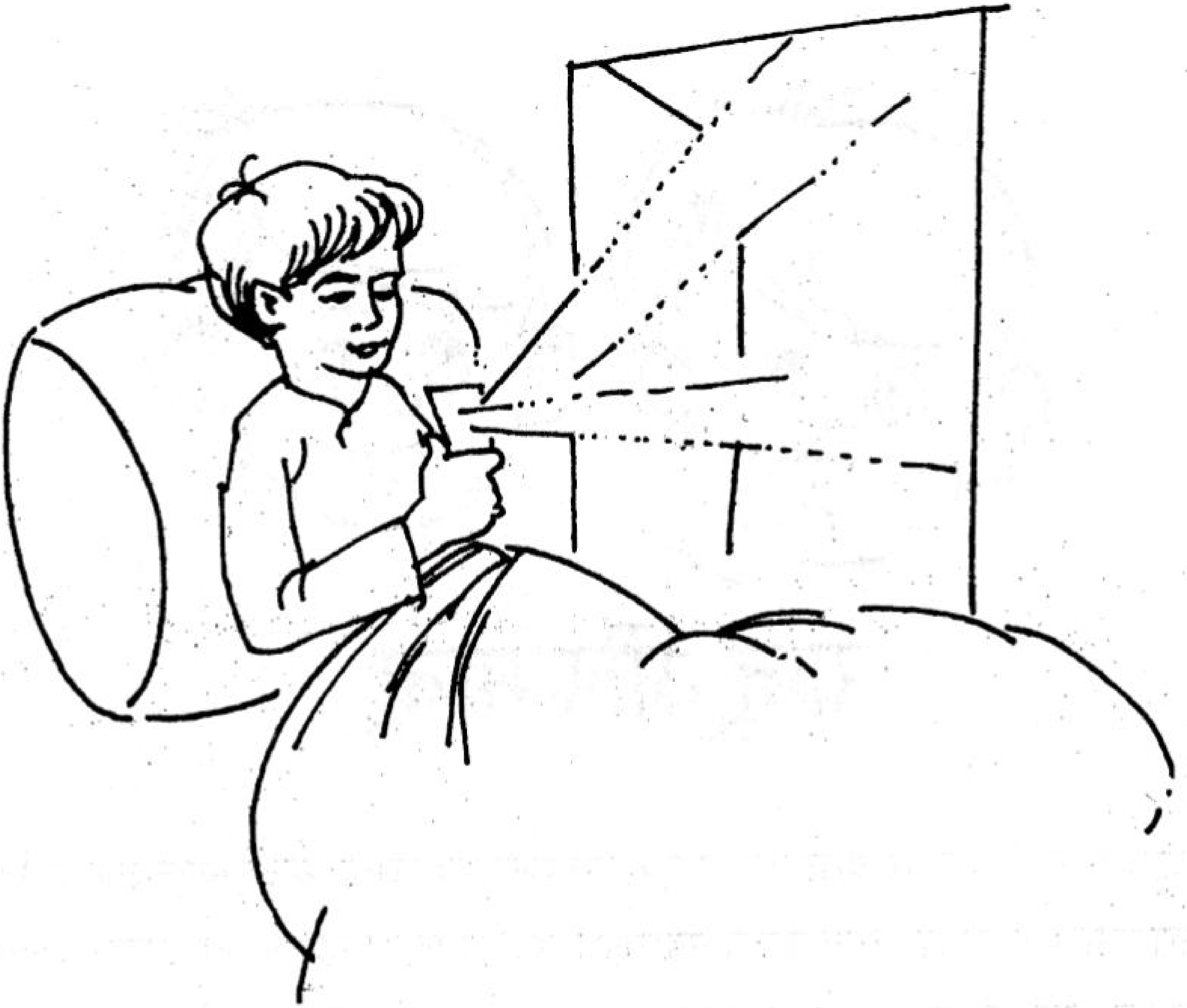

और मानू को रानू से मिलने तक की इजाज़त नहीं थी।

मानू यूँ ही बेकार-सा घूमते हुए पिछवाड़े के बग़ीचे में चला आया। चटक धूप निकली हुई थी, रास्ते लगभग सूखे थे। इस समय रानू के साथ गेंद खेलने में कितना मज़ा आता – लेकिन रानू को तो बहुत समय तक बिस्तर पर पड़े रहना होगा। यह कोई हँसी-मज़ाक़ की बात नहीं है। मानू इसे जानता है। वह जाड़े में बीमार पड़ गया था। लेकिन रानू उसे देखने के लिए रोज़ आ जाया करता था। इस तरह बिस्तर पर पड़े होने वाले दिन भी काफ़ी तेज़ी से बीत गये थे। रानू का मामला दूसरा है। उसके लिए दिन बहुत धीरे-धीरे गुज़रता होगा।

मानू ने अपनी आँखें सिकोड़ते हुए सूरज की ओर ताका। और हठात् उसे वह दिन याद आ गया जब वह बिस्तर में बीमार पड़ा हुआ था और सूरज ने उसके कमरे के

भीतर झाँका था। वह उत्साह से भर उठा था।"

उसे इतनी खुशी मिली थी जितनी रानू के आने से। लेकिन रानू तो सूरज को देख नहीं सकता। उसके कमरे में सूरज ने कभी अपनी रोशनी ही नहीं पहुँचायी। उसकी खिड़की का मुँह उत्तर की ओर था। रानू के पास न सूरज आता और न भेंट-मुलाक़ात करने वाले...

और अचानक मानू के दिमाग़ में एक विचार कौंधा। वह चुपचाप घर के भीतर गया और एक छोटा-सा जेबी आईना लेकर लौटा। उसने उसका मुँह सूरज की ओर कर दिया। और तुरन्त ही प्रकाश का एक धब्बा मकान की दीवार पर उछल पड़ा। मानू ने दर्पण को खिसकाया। रोशनी का वह दिल्लगीबाज़ धब्बा आज्ञाकारिता के साथ दीवार पर दौड़ता फिरा। वह रानू की खिड़की के नीचे रुका और छलाँग मारकर भीतर पहुँच गया।

वह चमकीला-सा धब्बा अब मानू को नज़र नहीं आ रहा था। परन्तु वह जानता था कि वह रानू के कमरे में ही है, उसके बिस्तर से सटी दीवार पर, मज़ाक़िया ढंग से इधर-उधर फुदकता और उसके मित्र के चेहरे पर मुस्कुराहट लाता हुआ। और एक बार कोई बीमार बच्चा मुस्कुराया नहीं कि समझो वह स्वस्थ होने की राह पर चल पड़ा है। मानू की दादी हमेशा यही कहा करती थीं।

काफ़ी देर तक मकान के कोने में खड़ा मानू रानू के कमरे तक धूप का वह टुकड़ा भेजता रहा। वह वहाँ तब तक खड़ा रहा जब तक कि सूरज बागों के पीछे डूब नहीं गया।

रात में अपने बिस्तर में सिमटा हुआ वह लगातार बुदबुदाता रहा।

"मेरे प्यारे सूरज! कल फिर चमकना! रानू के लिए फिर से चमकना!"

अपने होंठों पर यह प्रार्थना लिए वह नींद में डूब गया।

और विशाल सूरज नन्हे-से मानू की इच्छा पूरी करने के सिवाय कुछ न कर सकता था। उसे चमकना ही था रानू के लिए, मानू के लिए और उनकी महान मित्रता के लिए।

अनुराग ट्रस्ट